SEMESTER – II

CC – 8

प्राचीन भारत में कृषि

Topic

वैदिक कालीन कृषि-व्यवस्था

Vetted by :

प्रो॰ (डॉ॰) सुरेंद्र कुमार
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग
पटना विश्वविद्यालय, पटना
संपर्क : 9835463960

डॉ॰ राजेश कुमार
अतिथि शिक्षक, इतिहास विभाग
पटना विश्वविद्यालय, पटना
संपर्क : 9430934482

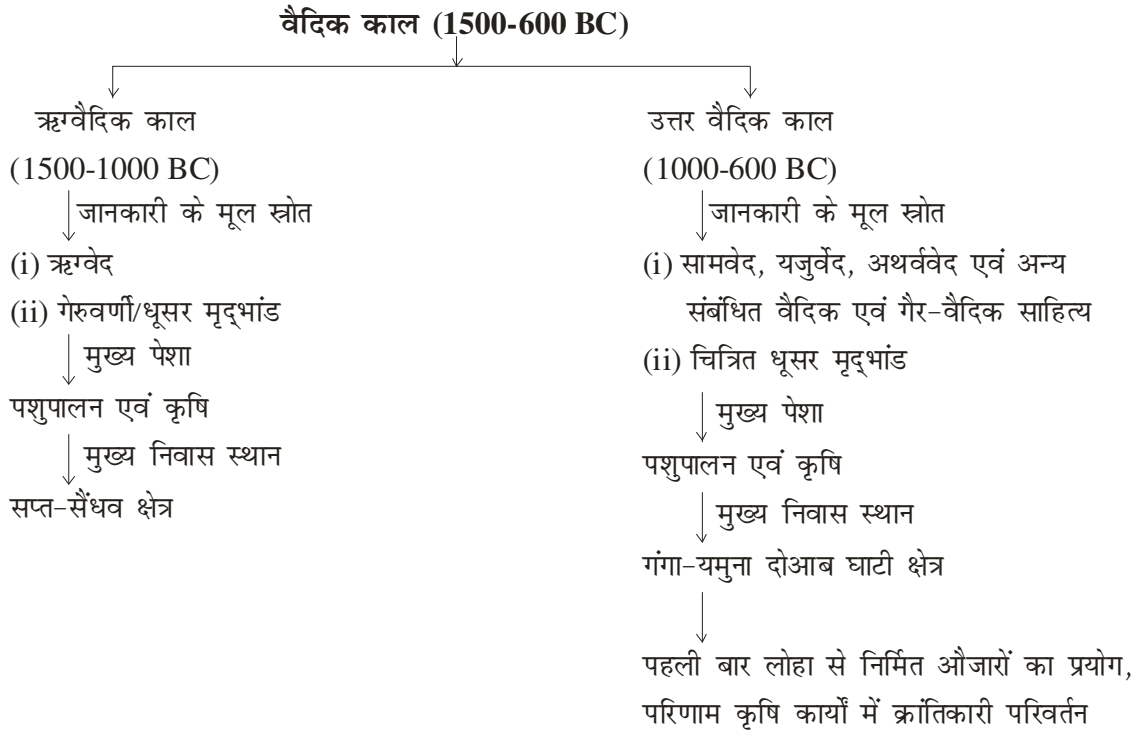

➢ उद्देश्य :–

प्राचीन भारत में कृषि के इस इकाई में आप वैदिककालीन कृषि के बारे में जान पाएँगे । वैदिक कालमें कृषि कार्यों में लोहे के प्रयोग के बाद आए परिवर्तनों को इस अध्याय में आप पढ़ेंगे । इसमें वैदिक काल के दो चरणों ऋग्वैदिक काल तथा उत्तर-वैदिक काल के कृषि के बारे में चर्चा की गई है ।

➢ प्रस्तावना :–

इस इकाई के पहले चरण में सैंधवकालीन कृषि एवं किसान के बारे में आपने पढ़ा होगा। इस अध्याय में वैदिक काल की कृषि की चर्चा की गई है । शुरूआती दौर में जब आर्य (श्रेष्ठ जन) भारत आए, तब वे पशुचारक समाज से संबंधित थे । कृषि का उल्लेख इस काल में कम मिलता है । ऋग्वेद के चौथे मंडल में कृषि कार्य का उल्लेख तो मिलता है, परंतु इसकी विस्तृत जानकारी उत्तर-वैदिक से मिलनी शुरू होती है । उत्तर-वैदिक काल में लोहे का प्रयोग होना शुरू हुआ, जिससे कृषि योग्य भूमि का विस्तार हुआ और

अधिशेष उत्पादन भी होने लगा । इससे इस काल में व्यापार–वाणिज्य का विकास हुआ, जिससे द्वितीय नगरीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत हुई ।

- **वैदिक कालीन कृषि–व्यवस्था (1500-1000 BC) :–**

वैदिक काल में अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार पशुपालन एवं कृषि रहा था । इसकी जानकारी हमें वैदिक ग्रंथों से मिलती हैं । इन वैदिक ग्रंथों में वैदिक साहित्य (वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक एवं उपनिषद्) के अलावा अन्य धार्मिक एवं गैर–धार्मिक साहित्य शामिल है ।

वैदिक सभ्यता के निर्माता आर्य लोग थे । आर्य कहाँ से आए, इस सिद्धांत को लेकर इतिहासकारों में मतभेद कायम है । अभी तक जर्मन विद्वान् मैक्समूलर के इस सिद्धांत को ज्यादा अहमियत दी जाती है, कि आर्य लोग मध्य एशिया के निवासी थे । ये लोग मध्य एशिया से ईरान, अफगानिस्तान के रास्ते होते हुए भारत आए और भारत में जहाँ सबसे पहले जहाँ बसे, वह क्षेत्र **सप्त–सैंधव क्षेत्र** के नाम से जाना जाता है, जो सात नदियों का क्षेत्र कहलाता था । निश्चित रूप से नदियों के किनारे की भूमि उर्वरा रही होगी, जो कृषि कार्य के लिए उपयुक्त थी ।

इसके बावजूद प्रारंभिक आर्य भारत में अर्द्धयायावर के रूप में ही दिखाई पड़ते हैं । अद्धयायावरी होने के कारण ही ऋग्वेद अर्थव्यवस्था के सर्वेक्षण से केवल निर्वाह अर्थव्यवस्था का ही हमें ज्ञान प्राप्त होता है । इस तत्व का उदाहरण हमें प्रारंभिक आर्यों के संगठित कबायली संगठन से भी प्राप्त होता है, जिसमें ऐसे स्वरूप का ज्ञान प्राप्त नहीं होता, जिसमें एक वर्ग उत्पादक हो और दूसरा वर्ग उत्पादन पर नियंत्रण करता हो, बल्कि जो वर्ग उत्पादक है वही उसका **भोक्ता** भी है । आर्थिक वैषम्य का कोई स्वरूप नहीं दिखाई पड़ता ।

प्रारंभिक अवस्था में आर्यों का प्रमुख पेशा पशुपालन ही था । प्रारंभिक आर्य पशुओं को चराने के लिए चारागाह की तलाश में इधर–उधर आते–जाते रहते थे । पशु ही उनके

स्वत्व और संपत्ति के प्रमुख साधन थे । डी॰ एन॰ झा अपनी चना 'प्राचीन भारत' में लिखते हैं, कि यद्यपि पशुपालन आर्यों का प्रमुख पेशा था, तथापि वे खेती भी करते थे । वे आगे लिखते हैं, कि हड़प्पावासी अपने-आप ही खेत जातते थे, लेकिन उनके विपरीत ऋग्वैदिक आर्य हल के जरिए खेती करते थे, जिसमें बैल जुते रहते थे । उन्हें मौसम की भी जानकारी थी, जिससे उन्हें कृषि-कार्य में मदद मिलती थी । ऋग्वेद में पाँच ऋतुओं का भी उल्लेख मिलता है । इस बात के प्रमाण मिले हैं, कि आर्य जंगलों को जलाने और खेती की जमीन तैयार करने के लिए आग का इसतेमाल करते थे ।

पूर्व वैदिक काल के परवर्ती भाग में जुताई, बुआई, कटाई और ओसाई जैसे कृषि से संबंधित प्रक्रियाओं का भी उल्लेख मिलता है । संभवतः प्रारंभिक वैदिक काल के अंतिम दिनों में कृषि-अर्थव्यवस्था और ठोस हो गई थी । प्रसिद्ध विद्वान् **ए॰ एल॰ बाशम** अपनी रचना 'अद्भूत भारत' में लिखते हैं, कि अन्न के लिए केवल एक **यव** शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ बाद में **जौ** लगाया गया, परंतु संभव है कि इस समय में सभी उत्पादित अन्न इसमें सन्निहित हो । ए॰ एल॰ बाशम यह भी लिखते हैं, कि कुछ ऐसे भी प्रसंग है, जिनसे यह संदिग्ध भावार्थ निकाला जा सकता है, कि आर्य लोग सिंचाई के विषय में भी कुछ ज्ञान रखते थे ।

इस समय कबीले के सदस्यों का पशुओं पर तो समान अधिकार था, लेकिन संभवतः जमीन पर नहीं । ऋग्वेद में जमीन और जमीन की माप-प्रणाली के बारे में बहुत कुछ कहा गया है, लेकिन उसमें कहीं भी किसी व्यक्ति द्वारा जमीन की बिक्री, हस्तांतरण, गिरवी अथवा दान का वर्णन नहीं किया गया है । इससे स्पष्ट होता है, कि अभी जमीन पर व्यक्तिगत स्वामित्व का अधिक प्रचलन नहीं था ।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है, कि पूर्व वैदिक काल में कृषि का काय्र तो होता था, परंतु पशुपालन ही उनका पेशा बना रहा । ऋग्वेद के 10462 श्लोकों में मात्र 24 में ही कृषि का उल्लेख मिलता है । ऋग्वेद में कृषि के महत्व पर केवल तीन शब्द प्राप्त होते हैं उर्दर, धान्य, वापन्ति । **कृष** शब्द का कोई स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेद में नहीं मिलता । कृष शब्द के स्थान पर **कृष्ट** शब्द का प्रयोग 32 बार मिलता है, जिसका प्रयोग संभवतः

जन (लोग) के रूप में प्रतीत होता है जैसे : पंचकृष्ट्य । ऋग्वेद में देवकूल में देवियों के स्थान से भी कृषि के गौण स्थन का ज्ञान प्राप्त होता है, क्योंकि कृषि प्रधान समाज में देवियों का सम्मानजनक और विशिष्ट स्थान होता है, जबकि ऋग्वैदिक देवमंडल में इंद्राणी, रोधसी, अरूंधति आदि देवियों का उल्लेख होते हुए भी इनका विशिष्ट स्वरूप नहीं दिखाई पड़ता । ऋग्वेद में इंद्र द्वारा उषा के बलात्कार का भी वर्णन है । कृषि के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन उत्तर-वैदिक काल में दिखाई पड़ता है । जब आर्यों का अनार्यों की संस्कृति में मेल-मिलाप हुआ, क्योंकि ऋग्वेद में भी कृषि को विजित लोगों का ही धंधा कहा गया है ।

उत्तर-वैदिक काल (1000-600 BC) में आर्य जनों का का प्रमुख पेशा कृषि एवं पशुपालन हो गया । इस समय आर्यों का आगमन सप्त-सैंधव क्षेत्रों से गंगा-यमुना, दोआब घाटी की ओर हुआ । प्रारंभ में अग्नि की सहायता से जमीन को साफ किया गया, जिसकी जानकारी शतपथ ब्राह्मण ग्रंथ से भी मिलती है । यजुर्वेद से संबंधित शतपथ ब्राह्मण ग्रंथ से जानकारी मिलती है, कि "आग धरती को जलाती हुई पूरब की ओर बढ़ती गई और सदानीरा (वर्तमान गंडक) नदी के पास पहुँचकर रूक गई । इसके अलावा कृषि योग्य भूमि के विकास के लिए जंगल को जलाने के साथ-साथ उसे काटने के लिए लोहे की कुल्हाड़ी का भी उपयोग किया जाने लगा । साहित्य में **श्याम अयस** (काली धातु) के रूप में इसका उल्लेख किया गया है । अंतजिखेर (उत्तर प्रदेश) की खुदाईयों से पता चलता है, कि 1000 ई॰ पू॰ में पश्चिमी उत्तर प्रदेश में लोहे का प्रचलन था । चूँकि, इस समय स्थायी निवास के प्रमाण भी मिलने लगे, जिसे स्पष्ट होता है, कि वे पहले की अपेक्षा बड़े पैमाने पर खेती करते थे ।

उत्तर-वैदिक काल में अधिक-से-अधिक अन्न उपजाना कृषक का कर्तव्य माना जाता था। शतपथ ब्राह्मण में हल जोतने और खेती के विभिन्न कार्यों से संबंधित अनुष्ठानों का विस्तृत विवरण दिया गया है । छह (6), आठ (8), बारह (12) और चौबीस (24) बैलों के जुए का वर्णन से सिद्ध होता है, कि हलों से गहरी जुलाई का काम लिया जाता था । अथर्ववेद में नयी नालियों में नदी का पानी ले जाने के धार्मिक अनुष्ठान का वर्णन मिलता है । इसमें अनावृष्टि और अतिवृष्टि से छुटकारा पाने के मंत्र भी दिए गए है ।

इस काल में कृषि-कार्य के तहत् अनेक प्रकार के अन्न का उत्पादन कृषकों द्वारा किया जाता था, जिनमें चावल (धान), जौ, मूंग, उड़द, गेहूँ, तिल, मसूर इत्यादि प्रमुख फसल थे । इस अवधि के वैदिक ग्रंथों में चावल (ब्रीहि) सबसे अधिक उल्लिखित है । हस्तिनापुर से चावल के जो अवशेष मिले हैं, वो आठवीं सदी ई॰ पू॰ के बताये जाते हैं । वैदिक अनुष्ठानों में भी चावल का उल्लेख गेहूँ आदि की तुलना में अधिक किया गया है। भौगोलिक दृष्टिकोण से भी गंगा-यमुना दोआब का क्षेत्र चावल उत्पादन के लिए विशिष्ट रूप से जाना जाता है । प्रो॰ डी॰ एन॰ झा के अनुसार चावल का पहली बार ही उल्लेख इस काल में किया गया । अथर्ववेद में ईख का भी उल्लेख मिलता है । इस काल में भूमि को उर्वर बनाने के लिए खाद (शकृत) दी जाती थी और **कुल्या** (नालियों) से सिंचाई की जाती थी ।

उत्तर-वैदिक काल के कृषक ऋतुओं के अनुसार फसलों की बुआई करना शुरू कर दिया था । त्रिस्तरीय संहिता में लिखा गया है कि **यव** अर्थात् जो सर्दियों में बोया जाता था और वह हेमंत ऋतु में पककर तैयार हो जाता था । धान की फसल वर्षा काल में बोई जाती थी और शरद् ऋतु में पकती थी । आज की ही तरह प्रमुख रूप से उस समय लगभग दो फसलें तैयार की जाती थी ।

इस काल में भूमि व्यक्तियों या परिवारों द्वारा अधिकृत हो चली थी, लेकिन घास का मैदान (खिल्प) अभी भी जनसाधारण के अधिकार में था । इस समय उदित जमींदार वर्ग द्वारा छोटे-छोटे किसानों को उनकी भूमि से हटाया जा रहा था, फिर भी भूमि हस्तांतरण को सार्वजनिक अनुमति नहीं थी । भूमि विभाजन सजात्य लोगों की अनुमति से ही किया जा सकता था । शतपथ ब्राह्मण ग्रंथ में भूमि अनुदान का पहला उल्लेख मिलता है । हालांकि एक मामले में ऐसा भी उदाहरण मिलता है, कि जब किसी ब्राह्मण को भूमि अनुदान में दी गई तो पृथ्वी देवी ने हस्तांतरित होने से स्वयं मना कर दिया ।

उत्तर-वैदिक काल में चूँकि कृषि योग्य भूमि के विस्तार तथा लोहे के प्रयोग के परिणामस्वरूप उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई थी, लेकिन इसके साथ-साथ अतिरेक

उत्पादन के बँटवारे को लेकर भी नियम बनने लगे । किसान अपने कठिन परिश्रम के द्वारा उत्पादित फसलों का एक बड़ा हिस्सा समाज के दो उच्च वर्णों (समाज का चतुवर्णीय विभाजन द्वारा समय था) को दे देता था । चूँकि सामाजिक व्यवस्था को वैचारिक नेतृत्व प्रदान करने का कार्य पुराहित कार्य करता था तथा राजस्व केंद्रीकृत हो रही राजनैतिक सत्ता का अधिनायक था । अतः उक्त दोनों वर्ण क्रमशः धार्मिक कर्मकांड एवं आंतरिक सुरक्षा के काम पर कृषि के अधिशेष के उत्पादकता से अलग होते हुए भी स्वामी थे । इस प्रकार इन दोनों वर्णों का उत्पादन के बुनियादी पक्ष से कोई सरोकार नहीं था । राजा की ओर से करों की वसूली के लिए **भागदूध** नामक अधिकारी की भी नियुक्ति की गई थी ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है, कि भारत के गाँवों में जिस ढंग से आज-कल किसान खेती करते हैं, जिस प्रकार वे अब लकड़ी और धातु के बने हलों को बैलों से चलाते थे, जिस प्रकार वे खेती को सींचते, बुआई करते और फसलों की कटाई करते थे, प्रायः उसी प्रकार से वैदिक युग से आर्य भी खेती किया करते थे ।

- **Suggested Reading :–**

1. राम शरण शर्मा : प्राचीन भारत
2. मजूमदार, राय चौधरी दत्त : भारत का वृहत् इतिहास
3. डी॰ एन॰ झा : प्राचीन भारत, एक रूप-रेखा
4. आर्थर लेवेलिन बाशम (ए॰ एल॰ बाशम) : अद्‌भूत भारत